[2015] 1 एस.सी.आर. 580

भारत संघ एवं अन्य

वी.एस.एन. मैती एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 5983/2007)

06 जनवरी, 2015

[दीपक मिश्रा एवं वी. गोपाल गौड़ा, जे.जे.]

सेवा कानून - प्रतिनिक्ति पर नियुक्ति - समयावधि से पहले प्रत्यावर्तन - प्रतिवादी को प्रतिनियुक्ति के आधार पर पांच वर्ष की अवधि के लिए या अगले आदेश तक, जो भी पहले हो, नियुक्त किया गया - एक वर्ष की सेवा देने के बाद, अपने मूल विभाग में प्रत्यावर्तित किया गया - चुनौती - न्यायाधिकरण द्वारा प्रत्यावर्तन के आदेश को बरकरार रखा गया, हालांकि, उच्च न्यायालय ने इसे रद्द कर दिया और प्रतिवादी को उक्त पद पर पुनः स्थापित करने का निर्देश जारी किया - अपील पर, निर्धारित किया गया: नियुक्ति की अधिसूचना की सूक्ष्म जांच से यह स्पष्ट होता है कि यह एक कार्यकाल पद है, जो पांच साल के लिए तय किया गया है, जब तक कि इसे घटाया नहौं जाता है - हालांकि, यह कटौती मनमाने ढंग से या मनमौजी तरीके से नहीं की जा सकती है - इसके लिए कुछ तर्क होना चाहिए - केवल इसलिए कि 'अगले आदेश तक' शब्दों का उपयोग किया जाता है, यह नियोक्ता को मनमानी करने की छूट नहीं देता है - इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा गया - हालांकि, पिछले छह वर्षों से अवधि गुज़र , चुकी है और प्रतिवादी अपने मूल विभाग में वापस आ गया है, न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिवादी को प्रतिनियुक्ति पद के लिए देय सम्पूर्ण वेतन, बची हुई शेष अवधि के लिए, 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित, भुगतान किया जाएगा।

अपील स्वीकार करते हुए न्यायालय ने निर्धारित कियाः-

1.1 यह साधारण स्थानांतरण का मामला नहीं है। यह ऐसी स्थिति नहीं है जहां कोई कह सके कि यह एक कैडर से दूसरे कैडर में या एक विभाग से दूसरे विभाग में समकक्ष पद के बदले प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण है। यह एक सरकारी विभाग से एक सरकारी निगम या एक सरकार से दूसरी सरकार में प्रतिनियुक्ति नहीं है। इस तथ्य पर कोई झूठा आक्षेप नहीं है कि पद एक अलग श्रेणी में आता है और प्रथम प्रतिवादी चयन की पूरी प्रक्रिया से गुज़रा था। अध्ययनपूर्वक सूक्ष्म जांच करने पर नियुक्ति की अधिसूचना से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि यह एक कार्यकाल वाली पोस्टिंग है और निर्धारित कार्यकाल पांच साल का है, जब तक कि इसे कम न किया जाए। लेकिन, एक अर्थगर्भित होने के कारण, यह कटौती मनमाने या मनमौजी तरीके से नहीं की जा सकती। इसके लिए कुछ तर्क होना चाहिए। केवल इसलिए कि 'अगले आदेश तक' शब्दों का उपयोग किया गया है, यह नियोक्ता को मनमानी करने की छूट नहीं देता। [पैरा 16] [591-जी-एच; 592-ए-बी]

1.2. विभाग में प्रत्यावर्तन के आदेश के संबंध में पत्र बिल्कुल चुप है तथा बिना किसी उचित कारण के नियुक्ति के कार्यकाल में कटौती की गई है। नियुक्ति की प्रकृति अर्थात कार्यकाल नियुक्ति के संबंध में, यह वास्तव में गहन जांच का सामना नहीं कर सकता। इसलिए, उक्त आदेश को निरस्त करने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में वास्तव में कोई दोष नहीं पाया जा सकता। यद्यपि प्रत्यावर्तन के आदेश को निरस्त करने के लिए उच्च न्यायालय के तर्क को स्वीकार किया जाता है, फिर भी इतने समय में सीजीपीडीटीएम के पद पर पुनः नियुक्ति के निर्देश को प्रभावी करना कठिन होगा। प्रथम प्रतिवादी की नियुक्ति 29.7.2003 को हुई थी। यह अवधि पिछले छह वर्षों में गुज़र चुकी है। इस न्यायालय द्वारा 01.11.2006 को यथास्थिति का आदेश दिया गया था। प्रथम प्रतिवादी अपने मूल विभाग में वापस आ गया है तथा वैज्ञानिक के पद पर कार्य कर रहा है। अपीलकर्ता को वेतन का नुकसान नहीं उठाना चाहिए, लेकिन यदि उच्च न्यायालय की तरह उसकी बहाली के लिए निर्देश जारी किया जाता है, तो यह एक विषम स्थिति पैदा करेगा। यह इस समय उचित नहीं होगा और इसलिए, न्याय के उद्देश के लिए सबसे बेहतर होगा, यदि उसे शेष अवधि के लिए सीजीपीडीटीएम के पद के लिए उसे देय संपूर्ण वेतन प्राप्त करने की अनुमति दी जाए, अर्थात, पांच साल में से वह अवधि घटा दी जाए जिसमें उसने वास्तव में सेवा की थी और वेतन प्राप्त किया था। शेष राशि का भुगतान तीन महीने के भीतर 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ किया जाएगा। यह दलील कि यह एक कार्यकालित पदस्थापना थी और इसलिए, वह कार्यकालिक पदधारक के रूप में जो वेतन प्राप्त कर रहा था, उसके बराबर वेतन पाने का हकदार है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। [पैरा 18, 19, 22, 23, 24] [593-डी-एफ; 597-ए-ई; 598-बी]

देवेश चंद्र दास बनाम भारत संघ 1970 (1) एससीआर 220: (1969) 2 एससीसी 158; अशोक कुमार रतिला/पटेल बनाम भारत संघ और अन्य 2012 (6) एससीआर 545: (2012) 7 एससीसी 757; श्री न्यायमूर्ति एस.के. रे बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य 2003 सी (1) एससीआर 434: (2003) 4 एससीसी 21; भारत संघ और अन्य बनाम भंवर लाल मुंडन 2013 (8) एससीआर 559: (2013) 12 एससीसी 433 - निर्दिष्ट किए गए।

निर्दिष्ट केस लॉ :

1970 (1) एससीआर 220	**निर्दिष्टस**	**पारा 9, 23**
2012 (6) एससीआर 545	**निर्दिष्ट**	**पारा 13, 23**
2003 (1) एससीआर 434	**निर्दिष्ट**	**पारा 20**
2013 (8) एससीआर 559	**निर्दिष्ट**	**पारा 24**

सिविल अपीलीय अधिकारिता .. सिविल अपील सं.5983 वर्ष 2007.

रिट पिटीशन (सेवा) सं.6106 वर्ष 2005 में झारखंड उच्च न्यायालय, रांची द्वारा पारित निर्णय एंव आदेश तारीख़ 18.05.2006 (से उद्भूत).

अपीलार्थीगण की ओर से- तुषार मेहता, ए.एस.जी, सुषमा मन्चंडा, जतेन्द्र महापात्रा, बी. कृष्णा प्रसाद.
उत्तरवादीगण की ओर से- कोलिन गोन्साल्वेस, पी.के. पट्टानायक, ए.पी.मोहंथी, परवीन स्वरुप.

न्यायालय का निर्णय **न्यायमूर्ति, दीपक मिश्रा** ने दिया. 1. इस अपील में, विशेष अनुमति द्वारा, डब्ल्यू.पी.(सर्विस) नम्बर वर्ष 2005 के 6106 में झारखंड उच्च न्यायालय, रांची द्वारा पारित दिनांक 18.5.2006 के निर्णय और आदेश के औचित्य और सुदृढ़ता पर सवाल उठाया गया है। जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (संक्षेप में 'न्यायाधिकरण'), रांची स्थित सर्किट पीठ द्वारा ओ.ए. संख्या 215/2005 में पारित आदेश को पलट दिया है।।

2. अनावश्यक विवरणों से हटकर, जिन तथ्यों का विवरण आपेक्षित है, वह यह है कि प्रथम प्रतिवादी केन्द्रीय खनन अनुसंधान संस्थान (वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद) में वैज्ञानिक ई-II के पद पर कार्यरत था। 29.07.2003 को उन्हें महानियंत्रक, पेटेंट, डिजाइन और ट्रेडमार्क (संक्षेप में, 'सीजीपीडीटीएम') के पद पर प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त किया गया था। एक वर्ष तक वहां सेवा देने के बाद, आदेश एफ. सं. 8/52/2001-पीपी एंड सी दिनांक 31.08.2004 द्वारा, उसे उसके मूल विभाग में प्रत्यावर्तित कर दिया गया। उक्त आदेश को न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया था कि उन्हें समय से पहले उनके मूल विभाग में वापस नहीं भेजा जा सकता था और ऑडी अल्ट्राम पार्टम (दूसरे पक्ष की भी बात सुनो) के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ था। प्रथम प्रतिवादी के उक्त रुख का भारत संघ के अधिकारियों ने विरोध किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रस्तावित किया गया कि उन्हें इस पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वे प्रतिनियुक्ति पर थे। ऐसा कहा गया, कुछ निश्चित अवधि के यात्रा भत्ता और वेतन से सम्बंधित दादरसी का दावा भी किया गया था। न्यायाधिकरण ने भारत संघ द्वारा रखे गए दृष्टांत को स्वीकार कर लिया और मूल आवेदन को ख़ारिज कर दिया। हालांकि, जहां तक कुछ निश्चित अवधि के यात्रा भत्ता और वेतन के भुगतान के सम्बंध में आधिकरण ने निदेश दिया कि इसका विनिश्चय क़ानून के अनुसार, वाजिब सत्यापन के बाद, उत्तरवादी द्वारा किया जाना चाहिए।

3. न्यायाधिकरण के उपरोक्त निर्णय से असंतुष्ट होकर, प्रथम उत्तरवादी-प्रतिवादी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया। उच्च न्यायालय ने दो सवालों को उठाया, नामतः क्या आवेदक को उसके मूल विभाग में प्रत्यवर्तित हेतु 31 अगस्त, 2004 का आदेश एफ.सं.8/52/2001-पीपी एंड सी, दिनांक 31वीं अगस्त, 2004 भारत सरकार, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग के अवर सचिव द्वारा जारी, अवैधानिक

था;और क्या याचिकाकर्ता को पेटेंट, डिजाइन एवं ट्रेडमार्क, महानियंत्रक के पद पर बने रहने का अधिकार था।

4. उच्च न्यायालय ने प्रश्नों का अन्दाज़ गठित करने के बाद इस तथ्य पर ध्यान दिया कि भारत संघ ने 20/26.10.2001 को रोजगार समाचार में एक विज्ञापन जारी किया था जिसमें सीजीपीडीटीएम के पद पर नियुक्ति के लिए योग्य उम्मीदवारों से आवेदन मांगे गए थे और मंत्रालय ने अल्पकालिक अनुबंध सहित प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण द्वारा पद भरने का प्रस्ताव दिया था। प्रथम प्रतिवादी ने पात्रता रखते हुए अपने मूल विभाग यानी केंद्रीय खनन अनुसंधान संस्थान, धनबाद के माध्यम से आवेदन किया और उसका चयन संघ लोक सेवा आयोग (संक्षेप में यू.पी.एस.सी.) द्वारा किया गया, जिसने 04.06.2002 को साक्षतकार आयोजित किया था और याची को उपयुक्त पाते हुए उसके नाम को नियुक्ति हेतु सिफ़ारिश की थी।

सक्षम प्राधिकारी ने प्रथम प्रतिवादी, उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता, को 18,400-500-22,400 रुपये के वेतनमान में सीजीपीडीटीएम के पद पर पांच साल की अवधि के लिए या अगले आदेशों तक, जो भी पहले हो, पद का कार्यभार संभालने की तारीख से प्रतिनियुक्ति के आधार पर नियुक्त करने को मंजूरी दी। उक्त आदेश भारत सरकार के औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग के उप सचिव द्वारा जारी पत्र संख्या 8/52/2001-पीपी एंड सी (खंड II) दिनांक 23.6.2003 के माध्यम से संप्रेषित किया गया था। इसके बाद, एक नियुक्ति पत्र दिनांक 11.08.2003 प्रथन उत्तरवादी को, अध्यक्ष के नाम से, उसके प्रतिनियुक्ति के आधार पर नियुक्ति , पांच वर्षों के लिए या अगले आदेश तक जो पहले हो, जारी किया गया था, ।

5. उपरोक्त नियुक्ति आदेश के अनुसरण में, प्रथम प्रतिवादी ने उक्त पद पर कार्यभार ग्रहण किया तथा कार्य करना जारी रखा, लेकिन ग्यारह महीने के पश्चात्, भारत रकासर, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग के अवर सचिव, उसे उसके मूल विभाग में वापस भेजने का आदेश एफ संख्या 8/52/2001-पीपीएंडसी दिनांकित 31.8.2004 जारी किया, । उच्च न्यायालय ने तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और प्रथम प्रतिवादी की नियुक्ति की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए यह निर्धारित किया कि उसकी नियुक्ति केवल प्रतिनियुक्ति का मामला नहीं था; नियोक्ता के पास उसे उसके मूल विभाग में वापस भेजने का विशेषाधिकार नहीं था, क्योंकि विवाद मूल रूप से नियुक्ति और नियुक्ति के स्रोत यानी

स्थानांतरण पर प्रतिनियुक्ति से संबंधित था; अनुच्छेद 14 और 16 के तहत निहित सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया था, क्योंकि अधिकारियों ने उस आधार का खुलासा नहीं किया था जिसके लिए उसे मूल विभाग में वापस भेजकर ऐसी नियुक्ति में बाधा उत्पन्न की गई थी; किसी भी उचित या वैध आधार की अनुपस्थिति में, आदेश को मनमाना माना जाना चाहिए, जिस से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है; और भारत सरकार के अवर सचिव प्रत्यावर्तन का आदेश पारित नहीं कर सकते थे क्योंकि नियुक्ति का आदेश भारत के राष्ट्रपति द्वारा जारी किया गया था। इस दृष्टिकोण से, उच्च न्यायालय ने प्रत्यावर्तन के विवादित आदेश को रद्द कर दिया और रिट याचिकाकर्ता को समान शर्तों पर सभी परिणामी लाभों के साथ सीजीपीडीटीएम के पद पर बहाल करने का निर्देश दिया।

6. हमने भारत संघ के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल, श्री तुषार मेहता, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री कॉलिन गोंसाल्वेस और प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री प्रवीण स्वरूप को सुना।

7. उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश की बचावीयता और कानूनी वैधता को समझने के लिए, दिनांक 7.8.2003 की अधिसूचना को पुनः प्रस्तुत करना आवश्यक है जिसके द्वारा प्रथम प्रतिवादी की नियुक्ति की गई थी। यह निम्नलिखित पाठ्य है:

“अधिसूचना”

संख्या 8/52/2001-पीपी एंड सी: राष्ट्रपति के प्रमोद प्रसाद पर केन्द्रीय खनन अनुसंधान संस्थान (वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद) के वैज्ञानिक ई-II, डॉ एस एन मैती को वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय (औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग) के पेटेंट, डिजाइन और ट्रेडमार्क के महानियंत्रक के रूप में प्रतिनियुक्ति के आधार पर 29 जुलाई, 2003 की पूर्वाह्न से पांच साल की अवधि के लिए या अगले आदेशों तक, जो भी पहले हो, नियुक्त करते हैं।

एसडी/-

(वाई.पी. वशिष्ट) अवर सचिव, भारत सरकार”

8. उपरोक्त आदेश से यह स्पष्ट है कि प्रथम प्रतिवादी को पांच वर्ष की अवधि के लिए या अगले आदेश तक, जो भी पहले हो, प्रतिनियुक्ति के आधार पर नियुक्त किया गया था। श्री तुषार मेहता, विद्वान ASG का कहना है कि यह आदेश, जैसा कि स्पष्ट है, प्रतिनियुक्ति का आदेश है, नियोक्ता का यह विशेषाधिकार है कि वह उसे पाँच वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले बिना कोई कारण बताए मूल विभाग में वापस बुला ले, जैसा कि नियुक्ति के आदेश में निहित है। इसके विपरीत, श्री गोंसाल्वेस, प्रथम प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील का तर्क है कि किसी भी कारण के अभाव में ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता था, क्योंकि इसमें पूर्ण मनमानी की बू आती है।

   प्रतिवादी संख्या 2, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) का कहना है कि प्रथम प्रतिवादी केवल प्रतिनियुक्ति पर गया था और वहां से विमुक्त होने पर उसे मूल विभाग में वापस आना ही था।

9. तथ्यों की उत्सुकतापूर्वक सराहना करने पर, जिसमें एक विज्ञापन जारी करना, चयन प्रक्रिया जिसके कारण अंततः यूपीएससी द्वारा सिफारिश की गई और अंततः अधिसूचना जारी की गई, श्री तुषार मेहता की दलील को स्वीकार करना बेहद मुश्किल है कि यह एक विभाग द्वारा दूसरे विभाग में प्रतिनियुक्ति है या दूसरे शब्दों में कहें तो मूल विभाग ने प्रथम प्रतिवादी की सेवाएं उधार दी थीं, उधार लेने वाले विभाग को। यह महज़ प्रतिनियुक्ति नहीं है। जिस अधिसूचना के द्वारा प्रथम प्रतिवादी की नियुक्ति की गई थी, उसकी प्रकृति और चरित्र अलग है। विद्वान वरिष्ठ वकील श्री गोंसाल्वेस ने हमें इस निर्णय के लिए प्रोत्साहित किया है।

   देबेश चंद्र दास बनाम भारत संघ[1]. कथित मामले में, अपीलकर्ता, जो भारतीय सिविल सेवा का सदस्य था, को कैबिनेट की नियुक्ति समिति द्वारा सामाजिक सुरक्षा विभाग के सचिव के रूप में कार्य करने के लिए चुना गया था और वह उस विभाग में कार्यरत रहा। इसके बाद, उसे 20 जून, 1966 और 7 सितंबर, 1966 को कैबिनेट सचिव से कुछ संचार प्राप्त हुए। जिस से उसे अप ने पद के दर्जाबंदी में कटौती का

[1] (1969) 2 एससीसी 158

नोटिस माना और 19 सितंबर, 1966 को कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर कर इसे चुनौती दी। कई आधारों पर दलील दी गई, जिसमें अन्य बातों के अलावा यह भी कहा गया कि रैंक में कमी की गई है। उच्च न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार नहीं किया और रिट याचिका ख़ारिज कर दी|

अपीलकर्ता की ओर से इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि चूंकि यह पदावनति-प्रत्यावर्तन दंड की प्रकृति का है, इसलिए अनुच्छेद 311(2) के तहत प्रक्रिया का पालन किया जाना अपेक्षित है क्योंकि इसका घोर उल्लंघन हुआ था, इसलिए भारत सरकार द्वारा पारित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता।

भारत सरकार ने इस दलील के बर-ख़िलाफ़, अन्य बातों के साथ-साथ यह भी निवेदना किया गया कि वह प्रतिनियुक्ति पर थे और प्रतिनियुक्ति किसी भी समय समाप्त की जा सकती है; इनकी नियुक्ति का आदेश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि नियुक्ति "गले आदेश तक" थी; यदि इनकी सेवाएं आपेक्षत नहीं रह गई हैं तो उन्हें भारत सरकार (की सेवा में) बने रहने का कोई अधिकार नहीं है और उनके अमूल राज्य में उनका वापस लौटना रैंक में किसी भी तरह की कमी या दंड के समान नहीं है और इसलिए आदेश पूरी तरह से विधिसम्मत और उचित है।

10. न्यायालय ने,जैसा कि स्पष्ट है, विभिन्न प्रचलित नियमों, भारतीय प्रशासनिक सेवा के नियमों (कैडर नियमों), विशेष रूप से “कैडरों का गठन”, “कैडरों की संख्या”, “कैडर अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति” और ‘स्थायी पद’, ‘अस्थायी पद’ और ‘कार्यकाल पद’ की अवधारणा पर ध्यान दिया तथा विभिन्न कोणों से इस मुद्दे को संबोधित करते हुए इस पर तवज्जह दिया है और मुद्दे का उल्लेख करते हुए इस प्रकार निर्धारित किया:

11. “जो स्थिति उभर कर आती है वह यह है कि भारतीय प्रशासनिक सेवएं कैडर केवल राज्यों में ही पाई जाती हैं। भारत सरकार में कोई कैडर नहीं है। हालाँकि, इनमें से **कुछ** वयक्तियों को केंद्र में सेवा करने का इरादा रखते हैं। जब वे ऐसा करते हैं तो उन्हें बेहतर पारिश्रमिक और दर्जा मिलता है। वे सेवा में और यहाँ तक कि राष्ट्रपति के पूर्वता वारंट में भी उच्च रैंक प्राप्त करते हैं। राज्यों में उन्हें किसी भी पद पर उतना वेतन नहीं मिल सकता जितना केंद्र में सचिवगण पाने के हक़दार हैं। केंद्र में नियुक्तियां किसी

भी तरह से प्रतिनियुक्ति नहीं हैं। इसका मतलब उच्च पद पर पदोन्नति है। एकमात्र सुरक्षा यह है कि केंद्र में कई पद कार्यकालपरक पद हैं। सचिव और समकक्ष पद पांच साल के लिए हैं और निचले पदों के लिए कार्यकाल की अवधि चार साल है।

12. अब, दास एक कार्यकालपरक पद पर हैं। पद पर उनका कार्यकाल सामान्यतः पाँच वर्ष का होता था। उन्हें 30 जुलाई, 1964 को सचिव का पद मिला और उनसे पाँच वर्ष, यानी 29 जुलाई, 1969 तक उस पद पर बने रहने की अपेक्षा की गई थी। यानी 29 जुलाई,1969 तक.। इस मामले में संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या उनके कार्यकाल की अवधि समाप्त होने से पहले असम राज्य में कम वेतन वाले पद पर वापस लौटना उनके पद में कमी के बराबर है और क्या इससे उन पर कलंक लगना शामिल है।"

11.ऐसा कहने के बाद, न्यायालय ने प्रत्यावर्तन और कलंक की अवधारणा पर विचार किया और अंततः व्यवस्था दिया कि:

"16. हमने ऊपर दिखाया है कि वह एक कार्यकाल (टेन्युर) पद धारण कर रहे थे। अधिसूचना के शब्दों "अगले आदेश तक" से कुछ भी नहीं बदलता है क्योंकि कार्यकालपरक पदों पर सभी नियुक्तियों का क्रम एक ही तरह का होता है। 1967 के संशोधन द्वारा मौलिक नियम 9(30) में, एक प्रपत्र निर्धारित किया गया था और उस प्रपत्र का उपयोग उनके मामले में किया गया था। ये अधिसूचनाएँ यह भी संकेत नहीं देती हैं कि यह एक प्रतिनियुक्ति थी जिसे किसी भी समय समाप्त किया जा सकता था। प्रतिनियुक्ति से संबंधित अधिसूचनाएँ हमेशा इस तथ्य को स्पष्ट रूप से बताती हैं। बहस के दौरान कई अधिसूचनाएँ हमारे ध्यान में लाई गईं जो इस तथ्य को पुष्ट करती हैं और इसके विपरीत कुछ भी नहीं दिखाया गया। इस प्रकार, दास ने एक कार्यकाल पद संभाला जो 29 जुलाई, 1969 तक चलना था। कुछ महीने ही बचे थे और असम में उनकी इतनी सख्त ज़रूरत नहीं थी कि वे पूरी अवधि के लिए यहाँ बने न रह सकें। तथ्य यह है कि उनके कार्यकाल में सेंध लगाना ज़रूरी पाया गया|

अवधि के अंत के करीब होने को तीन विकल्पों के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए और वे स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि इरादा उन्हें सचिव पद से वंचित करके उनके पद को कम करने का था। हमें बताया

गया कि किसी भी सचिव को अब तक इस तरह से वापस नहीं भेजा गया है और यह दंड के तत्व पर जोर देता है। इस प्रकार भारत सरकार में निचले पद पर उन्हें बनाए रखना पद में कमी थी।"

11.ऐसा निर्धारित करने के बाद, न्यायालय ने मत दिया कि संविधान के अनुच्छेद 311(2) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना अपीलकर्ता को उसके काम पर कलंक लगाते हुए पदअवनति किया जा रहा है और परिणामस्वरूप, प्रत्यावर्तन आदेश को रद्द कर दिया और अपीलकर्ता को तब तक सचिव के पद के बराबर वेतन वाले पद पर बनाए रखने का निर्देश दिया जब तक उसके कार्यकाल का अंत नहीं हो जाता।

13.श्री गोंसाल्वेस, विद्वान वरिष्ठ वकील, ने अशोक कुमार रतिलाल पटेल बनाम भारत संघ एवं अन्य[2] के मामले में हाल ही में दिए गए एक (न्यायिक) प्राधिकार से भी प्रेरणा ली है। उक्त मामले में,

अपीलकर्ता, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय में कंप्यूटर विभाग के निदेशक के रूप में कार्य करते हुए, उचित माध्यम से अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (संक्षेप में "एआईसीटीई") के अंतर्गत निदेशक के पद के लिए जारी विज्ञापन के अनुसरण में, वहां द्वितीय प्रतिवादी, आवेदन किया।लागू किया गया|। अंततः, पत्र के साथ संलग्न नियम और शर्तें जारी की गई थीं।इसमें कहा गया था कि प्रतिनियुक्ति एक वर्ष की अवधि विस्तार के आधार पर इसे कुल तीन वर्षों के लिए बढ़ाया जा सकेगा।अपीलकर्ता द्वारा एआईसीटीई को जो संचार भेजा गया था वह इस आशय का था कि उसने अपने विश्वविद्यालय से अनुरोध किया था कि वह उसे परिषद द्वारा सुझाई गई कार्यभार ग्रहण तिथि के भीतर प्रतिनियुक्ति पर एआईसीटीई में शामिल होने के लिए कार्यमुक्त करे। विश्वविद्यालय ने, बदले में, दिनांक 20.2.2010 के पत्र द्वारा द्वितीय प्रतिवादी, एआईसीटीई को सूचित किया कि विश्वविद्यालय द्वारा कार्यकारी परिषद द्वारा प्रतिनियुक्ति की स्वीकृति दी गई है, साथ ही यह भी सूचित किया गया है कि अपीलकर्ता को 17.3.2010 को कार्यमुक्त किया जाएगा। उक्त पत्र में वेतन घटक का भी उल्लेख किया गया था। तत्पश्चात, विश्वविद्यालय से पत्र प्राप्त होने पर एआईसीटीई ने अपीलकर्ता को जारी नियुक्ति प्रस्ताव इस आधार पर वापस ले लिया कि उच्च पद से निम्न पद पर प्रतिनियुक्ति नियमों के तहत ग्रहणीय नहीं थी। इस न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के आधारों के प्रासंगिक भाग को पुनः प्रस्तुत किया। ध्यान

---

[2] (2012) 7 एससीसी 757

रहे कि प्रस्ताव रद्द होने के बाद, एक अन्य विज्ञापन प्रकाशित किया गया था, जिस पर अपीलकर्ता ने गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष भी आपत्ति जताई थी, लेकि वह भी कामयाबी नहीं पा सकी। इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि वह प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण का मामला नहीं था, बल्कि नियुक्ति और चयन के लिए सभी उचित प्रक्रियाओं का पालन करने के बाद प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति का मामला था और इसलिए, चयन में किसी भी अवैधता की अनुपस्थिति में, प्रतिवादी के लिए नियुक्ति के प्रस्ताव को रद्द करना उचित नहीं था क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। प्रतिवादियों की ओर से, पत्र में उल्लिखित आधारों पर जोर दिया गया था यानी उच्च वेतनमान पाने वाले व्यक्ति को कम वेतनमान पर प्रतिनियुक्त नहीं किया जा सकता है; और वहां अपीलकर्ता को एआईसीटीई के निदेशक के पद के लिए अपने अधिकार का दावा करने का कोई अधिकार नहीं था।

14. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने 'प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण' और 'प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति' के बीच अंतर किया और इस प्रकार निर्धारित किया:

14. "हालाँकि, उपर्युक्त सिद्धांत को प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति (भर्ती) के मामले में लागू नहीं किया जा सकता। ऐसे मामले में, राजाय या संगठन या राज्य से राज्य में भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर सेवाओं में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति के लिए, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16 के प्रावधानों का पालन किया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता है और न ही नियुक्ति प्राधिकारी को मनमाने ढंग से कार्य करने या भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए कोई आदेश पारित करने की छूट है। प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति के पास अविभाज्य योग्यता होती है। निष्पक्ष और समान व्यवहार का अधिकार तथा एक बार जब ऐसे व्यक्ति का चयन हो जाता है और उसे प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति पत्र प्रस्तावित किया जाता है, तो उसे, अनुपयुक्तता या असंतोषजनक कार्य के धार के सिवाय, रद्द नहीं किया जा सकता है।

15. वर्तमान मामला प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण का मामला नहीं है। यह प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति का मामला है जिसके लिए विज्ञापन जारी किया गया था और उचित चयन के बाद, अपीलकर्ता के पक्ष में नियुक्ति का प्रस्ताव जारी किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, प्रतिवादी के लिए यह तर्क देना उचित नहीं था कि

अपीलकर्ता को प्रतिनियुक्ति का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है और प्रतिवादी अनुपयुक्तता या असंतोषजनक प्रदर्शन के आधार को छोड़कर, सबसे योग्य चयनित उम्मीदवार के पदभार ग्रहण (की ज्वाइनिंग) स्वीकार करने से इन्कार नहीं कर सकता है,,।

अंततः, संचारों पर ध्यान देते हुए, यह न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश दिये:

“18. उपरोक्त कारणों से, नियुक्ति वापसी का आपेक्षित आदेश दिनांक 11-3-2010 और गुजरात उच्च न्यायालय की खंडपीठ के आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और तदनुसार उन्हें रद्द किया जाता हैअलग रखा जाता है। चूंकि निदेशक का पद रिक्त है, इस न्यायालय के दिनांक 9-5-2011 के अंतरिम आदेश के मद्देनजर, हम दूसरे प्रतिवादी को प्रतिनियुक्ति पर एक वर्ष की अवधि के लिए अपीलकर्ता की नियुक्ति स्वीकार करने का निर्देश देते हैं, जिसे उसकी नियुक्ति की तिथि से गिना जाएगा और प्रतिनियुक्ति की अन्य शर्तें और नियम समान रहेंगे। उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय को अपीलकर्ता को कार्यमुक्त करने का निर्देश दिया जाता है और आगे दूसरे प्रतिवादी को अपीलकर्ता द्वारा रिपोर्टिंग की तिथि से एक सप्ताह के भीतर अपीलकर्ता के पदभार ग्रहण (ज्वाइनिंग) स्वीकार करने का निर्देश दिया जाता है।"

16. इस मामले में जो विवाद उभर कर सामने आया है वह यह कि, कानून के उपरोक्त सिद्धांतों की कसौटी पर इसे निर्णित किया जाए। हम पहले ही मत व्यक्त कर चुके हैं कि यह साधारण स्थानांतरण का मामला नहीं है। यह ऐसी स्थिति नहीं है जहां कोई कह सके कि यह एक कैडर से दूसरे कैडर या एक विभाग से दूसरे विभाग में समकक्ष पद के विरुद्ध प्रतिनियुक्ति पर स्थानांतरण है। यह एक सरकारी विभाग से एक सरकारी निगम या एक सरकार से दूसरी सरकार में प्रतिनियुक्ति नहीं है। इस तथ्य पर कोई आपत्ति नहीं है कि यह पद एक अलग श्रेणी में आता है और प्रथम प्रतिवादी चयन की पूरी प्रक्रिया से गुज़रा है। गहन अध्यन के सूक्ष्म परीक्षण पर नियुक्ति की अधिसूचना से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि यह एक कार्यकाल आधारित पदस्थापना है और निर्धारित कार्यकाल पांच साल का है, जब तक कि इस में कटौती न किया जाए। लेकिन एक <u>अर्थगर्भित</u> होने के कारण यह कटौती मनमाने या मनमौजी तरीके से नहीं की जा सकती। इसके लिए कुछ तर्क होना चाहिए। केवल इसलिए कि 'अगले आदेश तक' शब्दों का उपयोग किया गया है, यह नियोक्ता को मनमानी करने की छूट नहीं देता।.

17. फिलहाल हम इस बात की संविक्षा करेंगे कि किन परिस्थितियों में प्रत्यावर्तन का आदेश जारी किया गया है। भारत सरकार के अवर सचिव द्वारा दिनांक 17.1.2005 को जारी आक्षेपित संचार इस प्रकार है:

"तत्काल/गोपनीय"

संख्या 10/7/2004-ईओ(एसएम.II)

भारत सरकार

मंत्रीमंडल

के नियुक्ति समिति का सचिवालय

कार्मिक, लोक शिकायत निवारण एंव पेंशन मंत्रालय

कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग

नई दिल्ली, दिनांक 17 जनवरी, 2005

संदर्भ पत्र-व्यवहार औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग के साथ टेक लगाते हुए डी.ओ नम्बर 8/52/2001-पीपी एंड सी., दिनांक 9.12.2004।

2. कैबिनेट की नियुक्ति समिति ने निम्नलिखित प्रस्तावों को अनुमोदित किया है:

i. डॉ. एस.एन. मैती, डिजाइन और ट्रेड मार्क्स (सीजीपीडीटीएम) के महानियंत्रक को 31.08.2004 (एएन) के प्रभाव से उनके मूल विभाग में समय से पहले प्रत्यावर्तन और

ii. पेटेंट एवं डिजाइन के संयुक्त नियंत्रक श्री एस. चंद्रशेखरन को पेटेंट, डिजाइन एवं ट्रेडमार्क महानियंत्रक (सीजीपीडीटीएम) के पद का मौजूदा प्रभार 1 सितम्बर, 2004 के प्रभाव से एक वर्ष की अवधि के लिए सौंपा गया है, जिसके दौरान विभाग को इस पद के लिए एक नियमित पदधारी के चयन को अंतिम रूप देने का निर्देश दिया जा सकता है।

एसडी/- (रविन्द्र कुमार) अवर सचिव, भारत सरकार"

18.आदेश किसी भी पहलू पर पूर्णतः मौन है। प्रथम प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री गोंसाल्वेस द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यह पत्र प्रथम प्रतिवादी के खिलाफ की गई कुछ तुच्छ शिकायतों और कुछ पहलुओं से संबंधित उनके द्वारा किए गए कठोर और सख्त व्यवहार के कारण यह पत्र जारी किया गया है। जो भी हो, पत्र बिल्कुल मौन है और इसने बिना किसी उचित कारण के नियुक्ति के कार्यकाल की कटौती कर दी है। नियुक्ति की प्रकृति, यानी कार्यकाल-परक नियुक्ति के संबंध में, यह वास्तव में गहन जांच का सामना नहीं कर सकती है। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा उक्त आदेश की नुकीला निंदा करते हुए पारित निर्णय में वास्तव में कोई दोष नहीं पाया जा सकता ।

19. अगरचे हमने प्रत्यावर्तन के आदेश पर कुठार चोट करने के उच्च न्यायालय के तर्क को स्वीकार कर लिया है, फिर भी समय की इस दूरी पर, हम सीजीपीडीटीएम के पद पर पुनः नियुक्ति के निर्देश को प्रभावी करना कठिन पाते हैं। प्रथम प्रतिवादी की नियुक्ति 29.7.2003 को हुई थी। तब से अभी तक समय की यह दूरी बहुत लम्बी हो चुकी है। द्वितीय प्रतिवादी का पक्ष यह है कि प्रथम प्रतिवादी ने कार्यमुक्तहोने के पश्चात 16.11.2004 को अपने मूल विभाग में कार्यभार ग्रहण किया तथा 13.2.2007 के प्रभाव से वैज्ञानिक-जी का पद धारण किया तथा उसी पद पर बने रहे। प्रतिवादियों का यह भी पक्ष है कि पद पर एक नया व्यक्ति इस पद पर कार्यरत चला आ रहा है।

20. श्री गोंसाल्वेस, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करेंगे, इस बात पर जोर देते हुए, कि प्रथम प्रतिवादी को कार्यकाल की शेष अवधि के लिए कार्य करने की अनुमति दी जानी चाहिए, जो वह अनुचित हस्तक्षेप के कारण नहीं कर सका, क्योंकि इससे न केवल न्याय का उद्देश्य पूरा होगा, बल्कि उस कारण का निवारण भी होगा जिसे विफल कर दिया गया है और गला घोंट दिया गया है। उपर्युक्त रुख का विरोध करते हुए भारत संघ के विद्वान (ए.एस.जी) अतिरिक्त महान्यायविद् श्री तुषार मेहता ने प्रस्तुत किया कि छह वर्ष की समयावधि की समाप्ति को ध्यान में रखना होगा, क्योंकि घड़ी को पीछे ले जाना बहुत कठिन होगा। इस संदर्भ में, हम लाभ

के साथ, श्री न्यायमूर्ति एस.के.रे बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य[3] में दिए गए एक (क़ानूनी) प्राधिकरण का उल्लेख कर सकते हैं।. हम हम जानते हैं कि उक्त मामले में तथ्यात्मक मैट्रिक्स अलग था, लेकिन हम इसका उल्लेख सादृश्यता के उद्देश्य से कर रहे हैं. उक्त मामले में, अपीलकर्ता, जो पहले उड़ीसा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे, को उड़ीसा लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 1970 के तहत लोकपाल नियुक्त किया गया था। उक्त अधिनियम को उड़ीसा लोकपाल और लोकायुक्त (निरसन) अध्यादेश, 1992 द्वारा निरस्त कर दिया गया था, जो 16.7.1992 को प्रभावी हुआ। वह लोकपाल का पद धारण करने से रोक दिए गए। उक्त अध्यादेश को बाद में उड़ीसा लोकपाल और लोकायुक्त (निरसन) अधिनियम, 1992 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। उस मामले के ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की, जिसमें कहा गया कि उन्हें पद से हटने के कारण राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य पद पर नियुक्ति या किसी ऐसे स्थानीय प्राधिकरण, निगम, सरकारी कंपनी या सोसाइटी में किसी अन्य पद पर नियुक्ति के लिए अयोग्य होना पड़ा, जो राज्य सरकार के नियंत्रण के अधीन है और जिसे सरकार द्वारा इस संबंध में अधिसूचित किया गया है। उन्होंने लोकपाल के रूप में अपने कार्यकाल की शेष अवधि के लिए वेतन की हानि के लिए मुआवजे, उड़ीसा लोकपाल (सेवा की शर्तें) नियम, 1984 के नियम 7 के अनुसार 16-7-1992 से पेंशन, 17-8-1989 से 16-7-1992 की अवधि के दौरान उनके वेतन से काटी गई पेंशन की राशि की वापसी और 17.8.1989 से 16.7.1992 की अवधि के दौरान उन्हें प्राप्त अप्रयुक्त छुट्टी के नकदीकरण मूल्य का भुगतान का दावा किया।

21. उच्च न्यायालय ने उन्हें वेतन की हानि के लिए मुआवजा देने से इनकार कर दिया; लेकिन उच्च न्यायालय ने कुछ अन्य राहतें दी थीं, जिनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया कि क्या अपीलकर्ता लोकपाल के रूप में अपने कार्यकाल की शेष अवधि के लिए वेतन की हानि के लिए किसी भी मुआवजे का हकदार था, जिसे बाद में कटौती कर दिया गया था। न्यायालय ने पद के निरसन, उन्मूलन के तथ्य पर भी ध्यान दिया और अंततः यह राय दी कि इसमें पाए गए तथ्यात्मक मैट्रिक्स में पर्याप्त मुआवजा

---

[3] (2003) 4 एससीसी 21

दिया जाना चाहिए और यह मुआवजा उस शेष अवधि के लिए उसके वेतन की हानि के रूप में होना चाहिए जिसके लिए वह लोकपाल के पद पर रहा होता।

22. यदि हम उस निर्देश के पीछे के तर्क के नहीं बताते हैं, तो हम अपने कर्तव्य में विफल रहेंगे। यह इस प्रकार है:

"9. लोकपाल के पद को समाप्त करने के प्रभाव को समझने के दो तरीके हैं जिसके परिणामस्वरूप अपीलकर्ता के पद का कार्यकाल कम हो गया। एक यह है कि अपीलकर्ता ने कम से कम कुछ समय तक पद धारण किया है, इसलिए वह अधिनियम के प्रावधानों के तहत उत्पन्न होने वाले सभी प्रतिबंधों के अधीन है, जिसमें वे प्रतिबंध भी शामिल हैं जो उसे लोकपाल की हैसियत ख़त्म होने पर किसी भी पद पर रहने से रोकता हैं। दूसरा दृष्टिकोण यह हो सकता है कि पद के समाप्त होने पर अपीलकर्ता के लोकपाल न रहने पर पद धारण करने के प्रतिबंध उस पर नहीं लगेंगे। यदि बाद वाला दृष्टिकोण अपनाया जाता है, तो इससे असंगत परिणाम निकलेंगे क्योंकि लोकपाल के पद पर आसीन व्यक्ति ने कम से कम कुछ समय तक इस पद पर कार्य किया होगा, उसने कई मामलों को निपटाया होगा और इसलिए, उस पद की पवित्रता बनाए रखने के लिए, अधिनियम के तहत लगाए गए प्रतिबंधों को बनाए रखा जाना चाहिए। इसलिए, एकमात्र अन्य उचित तरीका यह है कि प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि जब ऐसे प्रतिबंध पद के समाप्त होने पर भी प्रभावी बने रहें, तो पद पर आसीन व्यक्ति को पद से वंचित रहने के लिए नहीं, बल्कि उसके बाद के प्रतिबंधों की संलग्नता के लिए उचित मुआवजा दिया जाना चाहिए।

10. प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि ऐसी स्थिति में रोजगार का नुकसान केवल सेवा की आकस्मिकता है और पद को समाप्त करने का अधिकार सरकार के पास उसी तरह उपलब्ध है जैसे पद सृजित करने का अधिकार है और जिस व्यक्ति का पद समाप्त किया गया है, उसे वेतन का हकदार नहीं होना चाहिए। हमारे विचार में, इन तर्कों का उस प्रश्न से कोई संबंध नहीं है जिसकी हमने जांच की है। इस मामले में मामले का सार लोकपाल के पद पर बने रहने के बाद किसी भी पद पर न रहने की अयोग्यता का प्रभाव है। जब वह लोकपाल का पद धारण करता है तो वह अन्य सभी पदों या व्यावसायिक हितों से वंचित हो जाता है और जिस पद पर वह है, वह भी निरसन अधिनियम के कारण उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। यदि प्रतिवादियों के

विद्वान वकील के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह असंगति को जन्म देगा और सभी तर्कों को मात देगा।

11. प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुतिकरण दिया कि अपीलकर्ता ने अपना मामला पेश नहीं किया या भविष्य में रोजगार के नुकसान के लिए मुआवजे का दावा नहीं किया है, बल्कि केवल वर्तमान कार्यकाल के लिए नुकसान का दावा किया है और इसलिए, हमें उसे कोई राहत नहीं देनी चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई रिट याचिका में तथ्यों और उनसे उत्पन्न होने वाले दावों को बताया जाता है। हो सकता है कि किसी मामले में, निर्धारित राहतें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली राहतों को स्पष्ट रूप से न बता पाएँ। हालाँकि, अदालतों के पास हमेशा राहतों को सांचे में ढाल लेने और उन्हें प्रदान करने की शक्ति होती है।"

23. हम फिर से कहने के लिए दोहराना चाहते हैं कि हम पूरी तरह सचेत हैं कि कथित मामले में,स्थिति अलग थी, लेकिन अदालत ने दादरसी को ढाला और मुआवज़ा प्रदान किया। न्यायालय विकल्प की तरफ़ जाने पर विचार नहीं किया, यानी जब एक बार पद को समाप्त कर दिया गया तो औफ़िस धारण करने का प्रतिबंध उसके लिए आकृष्ट नहीं होगा। न्यायालय ने दूसरी स्थिति के बारे में नहीं सोचा क्योंकि इसका परिणाम असंगत होगा और सभी तर्कों को मात कर देगा। हमने बार बार दुहराया है कि उस (न्यायिक) प्राधिकारी को केवल इस बात को ध्यान में रखने के लिए संदर्भित किया है कि कार्यकाल में कटौती से संबंधित कुछ परिस्थितियों में, न्यायालय तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर दादरसी (रिलीफ़) को ढाल सकता है। प्राप्त तथ्यात्मक परिदृश्य में, पिछले छह वर्षों की मुद्दत गुज़र चुकी है। इस न्यायालय द्वारा 01.11.2006 को यथास्थिति का आदेश दिया गया था। प्रथम प्रतिवादी अपने मूल विभाग में वापस आ गया है और वैज्ञानिक-जी के पद पर काम कर रहा है। देबेश चंद्र दास (सुप्रा) के फैसले का अंतर यह है कि उस मामले की तरह यहां इस मामले में कार्यकाल की अवधि उपलब्ध नहीं है। इसी तरह, अशोक कुमार रतिलाल पटेल (सुप्रा-ऊपर) के मामले में अपीलकर्ता की नियुक्ति नहीं की गई थी, इसलिए न्यायालय ने प्राधिकारियदियों को निदेश दिया कि नियुक्ति आदेश के मुताबिक़ उसकी नियुक्ति की जाए। वर्तमान मामले में हमारा सुविचारित ख़्याल है कि अपीलकर्ता को वेतन का नुकसान नहीं उठाना चाहिए, लेकिन यदि हम उसकी बहाली का निर्देश देते हैं, जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया है, तो इससे एक नियम विरुध्द समस्या पैदा होगी। हमारे विचार से, इस मरहले पर यह उचित नहीं है और इसलिए न्याय के

उद्देश्य की पूर्ति के लिए बेहतर होगा कि उसे शेष अवधि के लिए सीजीपीडीटीएम के पद के लिए देय संपूर्ण वेतन प्राप्त करने की अनुमति दी जाए, यानी पांच वर्षों में से वह अवधि घटा दी जाए जिसमें उसने वास्तव में सेवा की और वेतन प्राप्त किया। शेष राशि का भुगतान तीन महीने के भीतर 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ किया जाएगा।.

24. एक अन्य पहलू जो श्री गोंसाल्वेस ने हमारे सामने प्रमुखता से उजागर किया है, वह यह है कि प्रथम प्रतिवादी को वही वेतन पाने का हक़दार होना चाहिए जो वह वापस अपने मूल विभाग में आने के समय अंतिम वेतन प्राप्त कर रहा था। के पास वापस आने पर मिलने वाले अंतिम वेतन के आधार पर मिल रहा था। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि सीजीपीडीटीएम के पद पर रहते हुए वह उच्च वेतनमान प्राप्त कर रहा था, लेकिन सवाल यह है कि क्या मूल विभाग में उक्त वेतनमान को बनाए रखा जाना चाहिए। दूसरे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री प्रवीण स्वरूप ने भारत संघ एवं अन्य बनाम भंवर लाल मुंडन[4] मामले में किए गए विनिश्चय की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया । उक्त मामले में, एक प्रतिनियुक्तित को उस पद पर उच्च वेतनमान मिल रहा था, जबकि वह प्रतिनियुक्ति की हैसियत से एक विशेष पद पर था। मूल विभाग में प्रत्यावर्तन के बाद, उच्च पद पर पदोन्नत होने पर, पूर्व में कार्य करते समय उनके द्वारा प्राप्त वेतनमान को ध्यान में रखते हुए, उसे वही उच्च वेतनमान निश्चित किया गया, जिस पर वह ग़ैर-संवर्गीय पद कार्य करते हुए प्राप्त कर रहा । इस संदर्भ में, इस न्यायालय ने कहा कि वेतन का ऐसा निर्धारण पूरी तरह से गलत था और इसलिए, अधिकारीगण के कार्यक्षेत्र में था कि इसे सुधारें। श्री गोंसाल्वेस, विद्वान वरिष्ठ वकील ने निवेदन किया कि यहां यह टेन्युअर पोस्टिंग थी और इसलिए, ये टेन्योर-पोस्ट धारक के रूप में जो वेतन प्राप्त कर रहे थे, उसके बराबर वेतन पाने के हकदार हैं। पहली नज़र में, यह अंतर आकर्षक लग सकता है, लेकिन गहराई से सूक्ष्म निरीक्षण करने पर इसका महत्व फीका पड़ जाता है।

मान लिया जाए कि उन्होंने पांच साल का पूरा कार्यकाल पूरा कर लिया होता तो वह निश्चित रूप से मूल विभाग में आते। ऐसा कोई नियम या विनियमन नहीं है कि वह अपने मूल विभाग में उसके समकक्ष वेतनमान प्राप्त

---

[4] (2013) 12 एससीसी 433

करेगा । किसी भी तरह के सरस और अनावश्यक स्थिति से बचने के लिए वेतनमान से संबंधित सामान्य नियम लागू होना चाहिए। इसलिए, प्रस्तुतीकरण स्वीकार्य योग्य नहीं है और तदनुसार हम इसे पीछे छोड़ते हैं।

25. नतीजतन, यह अपील ऊपर दर्शाई गई सीमा तक स्वीकार की जाती है। ख़र्चा के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

निधि जैन

अपील मन्ज़ूर

यह

अनुवाद मो. अशरफ हुसैन अंसारी (पैनल अनुवादक) के द्वारा किया गया।